INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF MANAGEMENT SOCIOLOGY & HUMANITIES

IRJMSH

ISSN 2277 – 9809 (online)
ISSN 2348 - 9359 (Print)

An Internationally Indexed Peer Reviewed & Refereed Journal

www.IRJMSH.com
www.isarasolutions.com

Published by iSaRa Solutions

कुषाणकालीन मथुरा में बुद्ध-प्रतिमा का उद्भव एवं विकास बौद्ध मूर्तिकला, प्रतीक-विधान एवं प्रतिमा-विज्ञान (आयकनोग्राफी) का एक अध्ययन

डॉ. नीरज यादव
डॉ. शिव प्रसाद पाँचे
सहायक प्राध्यापक
दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश

भारतीय कला के इतिहास में मथुरा का स्थान विशिष्ट है। कुषाण काल में यह नगर बौद्ध, जैन तथा ब्राह्मण परंपराओं से जुड़ी मूर्तिकला का एक प्रमुख केंद्र बनकर उभरा, और इसी अवधि में बुद्ध की मानवाकार प्रतिमा के विकास ने भारतीय बौद्ध कला को एक नया आयाम प्रदान किया। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य इस उद्भव को किसी एकल कारण, विशेषकर गांधार के बाहरी प्रभाव तक सीमित न मानकर उसे मथुरा की स्थानीय शिल्प-परंपरा, धार्मिक आवश्यकताओं, दान-संस्कृति, बौद्ध प्रतीक-विधान तथा तत्कालीन सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश के व्यापक संदर्भ में समझना है। अध्ययन में मथुरा के धार्मिक परिवेश, मानवाकार बुद्ध-प्रतिमा के आरंभिक प्रमाणों, अभिलेखीय साक्ष्यों तथा उष्णीष, ऊर्णा, कपर्द, प्रभामंडल, संघाटी, हस्तमुद्रा और आसन जैसे प्रतिमा-लक्षणों का विश्लेषण किया गया है। इसके साथ मथुरा और गांधार की परंपराओं के बीच समानता और भिन्नता को भी रेखांकित किया गया है। निष्कर्षतः यह मत प्रस्तुत किया गया है कि मथुरा के शिल्पियों ने बुद्ध की आध्यात्मिक संकल्पना को भारतीय दृश्य-भाषा में ढालकर एक ऐसी प्रतिमा-परंपरा गढ़ी, जिसने आगे चलकर गुप्तकालीन बौद्ध कला की आधारशिला तैयार की।

मुख्य शब्द: मथुरा कला, बौद्ध धर्म, बुद्ध-प्रतिमा, कुषाण काल, बौद्ध मूर्तिकला, प्रतिमा-विज्ञान (आयकनोग्राफी), बोधिसत्त्व, अभिलेख, गांधार कला।

1. प्रस्तावना

भारतीय उपमहाद्वीप में बौद्ध धर्म का इतिहास केवल धार्मिक विचारों का इतिहास नहीं है; वह समाज, दर्शन, स्थापत्य, मूर्तिकला और दृश्य-संस्कृति के रूपांतरण का भी इतिहास है। आरंभिक बौद्ध कला में बुद्ध की उपस्थिति प्रायः परोक्ष रूप से, प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त की जाती थी। रिक्त सिंहासन, धर्मचक्र, बोधिवृक्ष, बुद्धपद और स्तूप जैसे प्रतीक उनकी स्मृति और उपदेश को दृश्य आधार प्रदान करते थे। कालांतर में इस

परोक्ष अभिव्यक्ति का स्थान मानवाकार प्रतिमा ने ले लिया, और इस परिवर्तन ने बौद्ध धार्मिक अनुभव को एक नया तथा प्रत्यक्ष दृश्य-केंद्र दिया।

बुद्ध की मानवाकार प्रतिमा कब, कहाँ और किन परिस्थितियों में विकसित हुई, यह प्रश्न कला-इतिहास के सर्वाधिक विवादित प्रश्नों में से एक रहा है। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में आल्फ्रेड फूशे ने इस प्रतिमा के उद्गम को गांधार की यूनानी-रोमन प्रभावित कला से जोड़ा, जबकि आनंद कुमारस्वामी ने इसके विरुद्ध बुद्ध-प्रतिमा की जड़ों को भारतीय, विशेषकर मथुरा की स्वदेशी परंपरा में खोजा।[1] यह "गांधार बनाम मथुरा" विमर्श दीर्घकाल तक इस क्षेत्र के अध्ययन की धुरी बना रहा। परवर्ती शोध ने इस द्वैध को कुछ शिथिल किया है। अब अधिकांश विद्वान यह मानते हैं कि मथुरा में बुद्ध-प्रतिमा के विकास को केवल किसी बाहरी प्रेरणा की प्रतिक्रिया मान लेना पर्याप्त नहीं है। यहाँ पहले से विद्यमान यक्ष, नाग तथा जैन तीर्थंकर प्रतिमाओं की परंपरा ने बुद्ध के मानवाकार स्वरूप को गढ़ने में मूलभूत भूमिका निभाई। सोन्या री क्विंटानिला ने मथुरा की आरंभिक मूर्तिकला के अपने अध्ययन में इसी बात पर बल दिया है कि बुद्ध-प्रतिमा के उद्भव को स्थानीय कलात्मक परंपराओं के व्यापक फलक पर रखकर देखा जाना चाहिए।[2] आधुनिक शोध में मथुरा की आरंभिक बुद्ध-प्रतिमाओं की तिथि प्रायः प्रथम शताब्दी ईस्वी के मध्य से उत्तरार्ध के बीच निर्धारित की जाती रही है।[3]

मथुरा की विशिष्टता उसके भौगोलिक और सांस्कृतिक परिवेश में भी निहित थी। यह क्षेत्र प्राचीन उत्तर भारत के महत्वपूर्ण व्यापारिक मार्गों से जुड़ा था और यहाँ अनेक धार्मिक समुदाय एक साथ सक्रिय थे। कुषाण काल में इस नगर ने राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक गतिविधियों के केंद्र के रूप में विशेष प्रतिष्ठा अर्जित की। यहाँ से प्राप्त मूर्तियों और अभिलेखों से ज्ञात होता है कि बौद्ध संस्थाओं तथा दानदाताओं ने मूर्ति-निर्माण को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया। मथुरा की मूर्तियाँ प्रायः चित्तीदार लाल बलुआ पत्थर में गढ़ी गईं, जो आगे चलकर इस शिल्प-परंपरा की अनन्य पहचान बन गया।[4]

प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह विवेचन करना है कि मथुरा में बुद्ध की मानवाकार प्रतिमा किन धार्मिक, सामाजिक और कलात्मक परिस्थितियों में विकसित हुई, तथा उसमें व्यक्त आध्यात्मिक आदर्श भारतीय मूर्तिकला की पारंपरिक दृश्य-भाषा से किस प्रकार जुड़ा रहा। इस हेतु यहाँ तीन प्रकार के साक्ष्यों को एक साथ रखकर देखा गया है: स्वयं प्रतिमाओं का शैली और प्रतिमा-लक्षण की दृष्टि से विश्लेषण, उनके आधार-पीठों पर उत्कीर्ण अभिलेखीय प्रमाण, तथा तत्कालीन धार्मिक-सामाजिक संदर्भ। इन तीनों को परस्पर मिलाकर पढ़ने से ही मथुरा की बुद्ध-प्रतिमा का समुचित ऐतिहासिक अर्थ उद्‌घाटित होता है।

2. कुषाणकालीन मथुरा का धार्मिक और सांस्कृतिक परिवेश

कुषाणकालीन मथुरा को समझे बिना वहाँ की बौद्ध मूर्तिकला को सही संदर्भ में रखना कठिन है। मथुरा में बौद्ध धर्म के साथ जैन धर्म तथा विभिन्न ब्राह्मण परंपराएँ भी सक्रिय थीं, और पुरातात्त्विक साक्ष्य यह प्रमाणित करते हैं कि यहाँ का धार्मिक जीवन बहुस्तरीय था। कंकाली टीला, कटरा, जमालपुर तथा गोविंदनगर जैसे स्थलों से प्राप्त मूर्तियाँ और स्थापत्य-अवशेष इस धार्मिक विविधता का स्पष्ट प्रमाण देते हैं।[5]

मथुरा की कला-परंपरा का विकास कुषाणों के आगमन के साथ अचानक नहीं हुआ। इससे पूर्व भी इस क्षेत्र में यक्ष तथा अन्य लोकधार्मिक प्रतिमाओं की सुदृढ़ परंपरा विद्यमान थी। विशालकाय शरीर, विस्तृत वक्ष, पुष्ट भुजाएँ और स्थिर मुद्रा जैसे लक्षण बाद की मथुरा प्रतिमाओं में भी दिखाई देते हैं। इसी आधार पर कुछ विद्वानों ने मथुरा की बुद्ध-प्रतिमा और पूर्ववर्ती यक्ष-प्रतिमा परंपरा के बीच संबंध की संभावना व्यक्त की है। तथापि आधुनिक अध्ययन इस संबंध को अधिक सावधानी से देखता है; इसे प्रत्यक्ष अनुकरण के बजाय एक साझा स्थानीय दृश्य-परंपरा के रूप में समझना अधिक संगत प्रतीत होता है।[6]

बौद्ध धर्म के प्रसार के साथ स्तूपों, विहारों और धार्मिक स्मारकों की आवश्यकता बढ़ी। इन संस्थाओं को दान देने वाले व्यक्तियों ने अपनी आस्था को स्थायी रूप देने के लिए मूर्तियों और स्थापत्य-अवयवों का निर्माण कराया। मथुरा से प्राप्त अभिलेख इस दान-परंपरा का महत्वपूर्ण प्रमाण प्रस्तुत करते हैं; अनेक अभिलेखों में दानदाता का नाम, धार्मिक उद्देश्य और कभी-कभी तिथि तक का उल्लेख मिलता है। इस दृष्टि से प्रतिमा केवल एक धार्मिक प्रतीक नहीं थी, बल्कि वह दाता की आस्था तथा पुण्य-अर्जन की आकांक्षा से भी गहराई से जुड़ी हुई थी।[7]

3. मथुरा में बुद्ध-प्रतिमा के उद्भव की समस्या

बुद्ध-प्रतिमा के उद्भव का प्रश्न भारतीय कला-इतिहास की सबसे जटिल समस्याओं में से एक है। आरंभिक बौद्ध कला में बुद्ध को प्रत्यक्ष मानवाकार रूप में न दर्शाने की प्रवृत्ति को दीर्घकाल तक "अनाकारी" (aniconic) परंपरा के रूप में समझाया गया। परवर्ती काल में बुद्ध के मानवीय स्वरूप का विकास हुआ, किंतु इस परिवर्तन की तिथि और उसके कारणों को लेकर विद्वानों में मतभेद बना रहा है।

मथुरा के संदर्भ में यह प्रश्न और भी जटिल हो जाता है, क्योंकि यहाँ बौद्ध और जैन प्रतिमाओं के साथ यक्ष तथा अन्य धार्मिक आकृतियों की प्राचीन परंपरा भी विद्यमान थी। सोन्या क्विंटानिला ने मथुरा की आरंभिक बुद्ध-प्रतिमा के संदर्भ में ईसापुर से प्राप्त एक लघु उत्कीर्ण फलक को अत्यंत महत्वपूर्ण माना है और उसे महाक्षत्रप शोडास के काल से संबद्ध करने का प्रस्ताव रखा है। उनके अनुसार बड़े आकार की स्वतंत्र बुद्ध-प्रतिमाएँ लगभग प्रथम शताब्दी ईस्वी के मध्य से विकसित होने लगी थीं।[8]

इस विवेचन में अभिलेखीय प्रमाण निर्णायक भूमिका निभाते हैं। सारनाथ से प्राप्त तथा भिक्षु बल द्वारा प्रतिष्ठापित वह विशाल बोधिसत्त्व-प्रतिमा, जो कनिष्क के तृतीय राज्य-वर्ष से संबंधित है, मथुरा शैली की मूर्तिकला के काल-निर्धारण का एक ठोस आधार प्रदान करती है। इससे स्पष्ट होता है कि कुषाण काल के आरंभिक चरण तक मथुरा में विकसित बौद्ध प्रतिमा-परंपरा पर्याप्त रूप से स्थापित हो चुकी थी। मथुरा नगर से प्राप्त कटरा टीले की सुविख्यात आसीन प्रतिमा भी इसी आरंभिक अवस्था का प्रतिनिधि उदाहरण है, जिसमें बुद्ध अथवा बोधिसत्त्व को सिंहासन पर पद्मासन में, सहचर आकृतियों तथा बोधिवृक्ष के साथ दर्शाया गया है।[9]

मथुरा की कला में बुद्ध और बोधिसत्त्व दोनों की प्रतिमाएँ मिलती हैं, किंतु आरंभिक चरण में दोनों के बीच का अंतर सदैव स्पष्ट नहीं रहता। बोधिसत्त्व सामान्यतः आभूषणों और राजसी वेशभूषा से युक्त दिखाई देते हैं, जबकि बुद्ध का स्वरूप अधिक संयमित तथा संन्यासोचित होता है। फिर भी आरंभिक मथुरा प्रतिमाओं में यह विभाजन पूर्णतः स्थिर नहीं था। यही कारण है कि प्रतिमाओं की पहचान केवल वस्त्र या आभूषण के आधार पर नहीं की जा सकती; इसके लिए अभिलेख, हस्तमुद्रा, आसन, प्रतीक और समग्र दृश्य-संरचना को एक साथ देखना आवश्यक है।

4. मथुरा बुद्ध-प्रतिमाओं के प्रतिमा-लक्षण (आयकनोग्राफिक विशेषताएँ)

कुषाणकालीन मथुरा बुद्ध-प्रतिमाओं की सबसे बड़ी विशेषता उनका सशक्त और जीवंत शारीरिक गठन है। चौड़े कंधे, उन्नत वक्ष, दृढ़ भुजाएँ, गोल मुख और संतुलित देह-संरचना मथुरा शैली की पहचान बन गए। इन प्रतिमाओं में बुद्ध को अत्यधिक कृश तपस्वी के रूप में नहीं, बल्कि आध्यात्मिक शक्ति और आंतरिक स्थिरता के मूर्त रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस देह-कल्पना का आधार बौद्ध साहित्य में वर्णित "महापुरुष लक्षण" की अवधारणा में भी खोजा जा सकता है, जिसके अनुसार बुद्ध का शरीर असाधारण शुभ लक्षणों से युक्त माना गया।[10]

मथुरा की बुद्ध-प्रतिमाओं में उष्णीष एक प्रमुख लक्षण है। सिर के ऊपरी भाग पर स्थित यह उभार बुद्ध की असाधारण आध्यात्मिक स्थिति का सूचक है। आरंभिक मथुरा प्रतिमाओं में यह उभार प्रायः शंख की भाँति कुंडलित केश-गुच्छ अर्थात कपर्द के रूप में दिखाई देता है, जो परवर्ती गुप्तकालीन प्रतिमाओं की घुँघराली केश-राशि से भिन्न है और मथुरा की आरंभिक शैली का विशिष्ट अभिज्ञान बन जाता है। इसके साथ ऊर्णा, अर्थात दोनों भौंहों के मध्य स्थित चिह्न, भी बुद्ध के महापुरुष लक्षणों में सम्मिलित था। इन प्रतीकों के माध्यम से शिल्पी ने ऐतिहासिक बुद्ध को सामान्य मनुष्य से पृथक एक आध्यात्मिक व्यक्तित्व के रूप में उभारा।

प्रभामंडल भी मथुरा की बुद्ध-प्रतिमा का महत्वपूर्ण अंग है। सिर के पीछे उत्कीर्ण प्रभामंडल ज्ञान और आध्यात्मिक प्रकाश का दृश्य प्रतीक था। परवर्ती काल में यह अत्यंत अलंकृत हो गया, किंतु कुषाणकालीन प्रतिमाओं में इसका स्वरूप अपेक्षाकृत संयमित रहता है; इनमें प्रायः किनारे पर सादा या दंतुरित अलंकरण ही मिलता है। यहाँ बुद्ध की आध्यात्मिक शक्ति केवल मुख-भाव से नहीं, बल्कि संपूर्ण प्रतिमा की दृश्य-संरचना से अभिव्यक्त होती है।

वस्त्रों का उपचार मथुरा और गांधार के बीच तुलना का एक प्रमुख आधार है। मथुरा की अनेक कुषाणकालीन प्रतिमाओं में संघाटी शरीर से सटी हुई तथा अत्यंत पारदर्शी प्रतीत होती है, जिससे नीचे की देह-संरचना स्पष्ट झलकती है; प्रायः वह एक कंधे को अनावृत छोड़ती है और दूसरे कंधे पर सलवटों की लयबद्ध रेखाओं में प्रवाहित होती है। इसके विपरीत गांधार की अनेक प्रतिमाओं में वस्त्र भारी और गहरी तहों के साथ, यथार्थवादी ढंग से गढ़ा गया है। इस प्रकार मथुरा में वस्त्र शरीर को ढकने के साथ-साथ उसकी आध्यात्मिक ऊर्जा को भी दृश्य रूप देता है।[11]

हस्तमुद्रा प्रतिमा की धार्मिक अर्थवत्ता को निर्धारित करती है। अभय मुद्रा निर्भयता और संरक्षण का भाव व्यक्त करती है, ध्यान मुद्रा समाधि से जुड़ी है, और धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा बुद्ध के उपदेश तथा धर्म-प्रवर्तन का प्रतीक बनी। उल्लेखनीय है कि कुषाणकालीन मथुरा में धर्मचक्र मुद्रा का व्यापक विकास परवर्ती गुप्तकाल की तुलना में सीमित रहा।[12] प्रतिमा के सिंहासन और अधिष्ठान भी अर्थपूर्ण हैं; सिंहासन पर आसीन बुद्ध के दोनों ओर सहचर आकृतियाँ, सिंह, चक्र अथवा अन्य प्रतीक उत्कीर्ण किए जाते थे, जिनके माध्यम से प्रतिमा की धार्मिक प्रतिष्ठा और बुद्ध के सार्वभौम आध्यात्मिक अधिकार की अभिव्यक्ति होती थी।

5. बुद्ध-प्रतिमा और स्थानीय भारतीय कलात्मक परंपरा

मथुरा की बुद्ध-प्रतिमा को केवल गांधार कला के प्रभाव का परिणाम मानना वर्तमान शोध की दृष्टि से पर्याप्त नहीं है। इसमें पूर्ववर्ती यक्ष-प्रतिमाओं की देह-शक्ति, जैन प्रतिमाओं की स्थिरता तथा स्थानीय धार्मिक प्रतीकों का प्रभाव स्पष्ट झलकता है। मथुरा के शिल्पियों ने इन परंपराओं को बौद्ध धार्मिक विचारों के साथ जोड़कर एक नई प्रतिमा-भाषा विकसित की।

इस प्रक्रिया को भारतीय कला की निरंतरता के रूप में देखा जाना चाहिए। बुद्ध-प्रतिमा का प्रयोजन किसी ऐतिहासिक व्यक्ति का यथावत चित्रण नहीं था; शिल्पी को ऐसे व्यक्तित्व की रचना करनी थी जिसमें ज्ञान, करुणा, शांति और आध्यात्मिक शक्ति एक साथ प्रकट हों। यही कारण है कि मथुरा के बुद्ध का शरीर पुष्ट है, किंतु मुख शांत; उसकी मुद्रा स्थिर है, फिर भी उसमें प्राण का स्पंदन अनुभव होता है। यह संतुलन मथुरा कला की सबसे उल्लेखनीय उपलब्धियों में से एक है।

मथुरा में बौद्ध प्रतिमाओं के साथ-साथ जैन तीर्थंकर प्रतिमाओं का विकास भी लगभग समान सांस्कृतिक वातावरण में हुआ। दोनों परंपराओं में स्थिरता, ध्यान और आध्यात्मिक संयम की अभिव्यक्ति मिलती है, जिससे यह संकेत मिलता है कि मथुरा के शिल्पी विभिन्न धार्मिक समुदायों के लिए पृथक प्रतिमाएँ गढ़ते हुए भी एक साझा स्थानीय शिल्प-परंपरा का उपयोग कर रहे थे।[13]

इस दृष्टि से बुद्ध-प्रतिमा का निर्माण किसी एक धार्मिक परंपरा की पूर्णतः स्वतंत्र कलात्मक घटना नहीं था, बल्कि मथुरा के बहुधार्मिक समाज में विकसित हो रही व्यापक प्रतिमा-संस्कृति का अंग था। अतः मथुरा कला को भारतीय धार्मिक सह-अस्तित्व और कलात्मक आदान-प्रदान का एक उल्लेखनीय उदाहरण माना जा सकता है।

6. मथुरा और गांधार कला: एक तुलनात्मक विवेचन

मथुरा और गांधार दोनों को बुद्ध-प्रतिमा के आरंभिक विकास के प्रमुख केंद्रों के रूप में देखा जाता है। दोनों के बीच संपर्क और समानताओं से इनकार नहीं किया जा सकता, तथापि उनकी कलात्मक अभिव्यक्ति में स्पष्ट अंतर विद्यमान है।

गांधार की कला में यूनानी और रोमन परंपराओं से जुड़े रूपात्मक गुण दिखाई देते हैं; मुख की संरचना, केशों की लहरदार व्यवस्था और भारी वस्त्र इसकी प्रमुख विशेषताओं में हैं। मथुरा में इसके विपरीत भारतीय देह-आदर्श और स्थानीय धार्मिक प्रतिमा-परंपरा अधिक प्रभावी दिखती है, और लाल चित्तीदार बलुआ पत्थर का प्रयोग इसे एक पृथक पहचान देता है।[14]

फिर भी दोनों को पूर्णतः विरोधी परंपराओं के रूप में देखना उचित नहीं होगा। कुषाण साम्राज्य ने उत्तर भारत और उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों के बीच राजनीतिक तथा आर्थिक संपर्कों को सुदृढ़ किया, और कलाकारों तथा कलात्मक रूपों का आदान-प्रदान इसी व्यापक वातावरण का अंग रहा होगा। मथुरा में कुछ ऐसी प्रतिमाएँ भी मिलती हैं जिनमें वस्त्र-उपचार गांधार शैली के निकट प्रतीत होता है। इससे ज्ञात होता है कि यहाँ के शिल्पी बाहरी रूपों से परिचित थे, किंतु उन्हें स्थानीय शिल्प-परंपरा के अनुरूप ढाल भी लेते थे।[15]

इस प्रकार मथुरा कला की मौलिकता उसके पूर्ण अलगाव में नहीं, बल्कि बाहरी प्रभावों को स्थानीय धार्मिक और कलात्मक आवश्यकताओं के अनुरूप आत्मसात करने की क्षमता में निहित है। यही प्रक्रिया आगे चलकर भारतीय बौद्ध कला के व्यापक विकास में निर्णायक सिद्ध हुई।

7. अभिलेख, दान और बुद्ध-प्रतिमा

बुद्ध-प्रतिमाओं के अध्ययन में अभिलेखों का महत्व अत्यधिक है। किसी प्रतिमा के आधार पर उत्कीर्ण अभिलेख से उसकी तिथि, दानदाता और धार्मिक उद्देश्य के विषय में प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त हो सकती है।

मथुरा की प्रतिमाओं पर उपलब्ध अभिलेख यह संकेत देते हैं कि मूर्ति-निर्माण व्यक्तिगत धार्मिक आस्था और सामुदायिक धार्मिक जीवन, दोनों से जुड़ा हुआ था।

मथुरा से प्राप्त अनेक बुद्ध-प्रतिमाओं के आधार-पीठों पर दान और धार्मिक उद्देश्य का उल्लेख मिलता है; इसी प्रकार कनिष्क-काल से संबंधित प्रतिमाओं के अभिलेख कला-इतिहास के लिए काल-निर्धारण का ठोस आधार प्रदान करते हैं।[16] इन अभिलेखों से यह भी स्पष्ट होता है कि बौद्ध मूर्तिकला का संरक्षण केवल राजसत्ता तक सीमित नहीं था; भिक्षुओं, भिक्षुणियों तथा गृहस्थ दानदाताओं की भूमिका भी इसमें उतनी ही महत्वपूर्ण थी।

दान-परंपरा को समझना इसलिए आवश्यक है क्योंकि इससे बुद्ध-प्रतिमा को केवल कलाकृति मानने की सीमा समाप्त होती है। प्रतिमा धार्मिक पुण्य अर्जित करने का माध्यम भी थी। दानदाता अपने माता-पिता, गुरु, परिवार, धार्मिक समुदाय अथवा समस्त प्राणियों के कल्याण की कामना से प्रतिमा प्रतिष्ठापित कराते थे। इस प्रकार प्रत्येक मूर्ति में व्यक्तिगत आस्था और सामुदायिक धार्मिक भावना का संगम दिखाई देता है। यही कारण है कि मथुरा की बुद्ध-प्रतिमाओं को सामाजिक इतिहास के स्रोत के रूप में भी पढ़ा जा सकता है। इनके माध्यम से यह समझने में सहायता मिलती है कि बौद्ध धर्म केवल मठों तक सीमित नहीं था; नगर के व्यापारी, भिक्षु, भिक्षुणियाँ और अन्य सामाजिक वर्ग धार्मिक कला के संरक्षण में सक्रिय भागीदार थे।

8. मथुरा बुद्ध-प्रतिमा की ऐतिहासिक महत्ता

कुषाणकालीन मथुरा की बुद्ध-प्रतिमा भारतीय कला-इतिहास में एक निर्णायक परिवर्तन का प्रतिनिधित्व करती है। इसके माध्यम से बुद्ध की धार्मिक अवधारणा एक स्थायी दृश्य रूप में सामने आई। यह केवल कला का परिवर्तन नहीं था; इसने बौद्ध धार्मिक अनुभव के स्वरूप को भी रूपांतरित किया।

मानवाकार बुद्ध-प्रतिमा के समक्ष भक्त अब केवल बुद्ध के उपदेश का स्मरण नहीं करता था, बल्कि उनकी एक प्रत्यक्ष दृश्य उपस्थिति के सम्मुख खड़ा होता था। प्रतिमा ध्यान, श्रद्धा, स्मरण और अनुष्ठान का केंद्र बन सकती थी, जिससे बौद्ध धर्म की दृश्य-संस्कृति अधिक प्रभावशाली और व्यापक बनी।

मथुरा की प्रतिमा-परंपरा का प्रभाव आगे चलकर गुप्तकालीन कला में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। गुप्तकालीन बुद्ध-प्रतिमाओं में मुख की आध्यात्मिक शांति, देह की लयात्मकता और वस्त्र की पारदर्शिता अधिक परिष्कृत रूप में प्रकट होती है। मथुरा ने जिस सुदृढ़ प्रतिमा-परंपरा की आधारभूमि तैयार की थी, उसी पर आगे भारतीय बौद्ध कला ने अपना अधिक परिमार्जित आध्यात्मिक सौंदर्य विकसित किया।[17]

9. निष्कर्ष

कुषाणकालीन मथुरा में बुद्ध-प्रतिमा का उद्भव भारतीय कला-इतिहास की एक जटिल और बहुआयामी प्रक्रिया का परिणाम था। इसे केवल गांधार कला के प्रभाव अथवा किसी एक राजवंश की धार्मिक नीति तक सीमित करके नहीं समझा जा सकता। मथुरा की स्थानीय मूर्तिकला परंपरा, यक्ष और जैन प्रतिमाओं का सांस्कृतिक वातावरण, बौद्ध धार्मिक आवश्यकताएँ, दान-परंपरा तथा कुषाणकालीन व्यापक सांस्कृतिक संपर्क, इन सबने मिलकर बुद्ध की मानवाकार प्रतिमा के विकास के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ निर्मित कीं। मथुरा के शिल्पियों ने बुद्ध के मानवीय शरीर को आध्यात्मिक अर्थ प्रदान किया। चौड़े कंधे, विस्तृत वक्ष, स्थिर मुद्रा और शांत मुखाकृति के माध्यम से बुद्ध को ऐसे व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया गया जिसमें शक्ति और करुणा, स्थिरता और जीवंतता तथा मानवीयता और आध्यात्मिकता का संतुलन दिखाई देता है। उष्णीष, ऊर्णा, कपर्द, प्रभामंडल, संघाटी और विविध हस्तमुद्राएँ इस दृश्य-भाषा को धार्मिक अर्थ प्रदान करती हैं।

मथुरा और गांधार की तुलना से यह स्पष्ट होता है कि दोनों केंद्रों ने बुद्ध-प्रतिमा के विकास में योगदान दिया, किंतु प्रत्येक ने उसे अपनी सांस्कृतिक और कलात्मक परंपरा के अनुरूप रूप दिया। गांधार ने बाहरी रूपात्मक प्रभावों को आत्मसात किया, जबकि मथुरा ने भारतीय प्रतिमा-परंपराओं को आधार बनाकर बुद्ध की एक विशिष्ट भारतीय छवि गढ़ी। दोनों के बीच संपर्क अवश्य था, फिर भी मथुरा कला को किसी अन्य केंद्र की मात्र प्रतिकृति मानना ऐतिहासिक दृष्टि से उचित नहीं है।

अभिलेखीय प्रमाण इस निष्कर्ष को और अधिक विश्वसनीय बनाते हैं। इनसे प्रतिमाओं की तिथि, दानदाता और धार्मिक उद्देश्य की जानकारी मिलती है, जिससे यह प्रकट होता है कि बुद्ध-प्रतिमा तत्कालीन धार्मिक जीवन का सक्रिय अंग थी और उसके निर्माण में राजकीय संरक्षण के साथ सामान्य दानदाताओं तथा बौद्ध समुदाय की भूमिका भी महत्वपूर्ण थी।

अतः यह कहा जा सकता है कि कुषाणकालीन मथुरा में बुद्ध-प्रतिमा का विकास भारतीय बौद्ध कला के इतिहास में एक निर्णायक मोड़ था। मथुरा ने बुद्ध की आध्यात्मिक अवधारणा को भारतीय दृश्य-भाषा में व्यक्त करके ऐसी कलात्मक परंपरा को जन्म दिया, जिसने आगे गुप्तकालीन बौद्ध कला को गहराई से प्रभावित किया। मथुरा की सबसे बड़ी उपलब्धि यही थी कि उसने बुद्ध को केवल एक धार्मिक स्मृति नहीं, अपितु भारतीय कला की एक सजीव और प्रभावशाली दृश्य उपस्थिति के रूप में प्रतिष्ठित किया।

अन्त्यटिप्पणियाँ (Endnotes)

1. अल्फ्रेड फूशे, *द बिगिनिंग्स ऑफ बुद्धिस्ट आर्ट एंड अदर एसेज इन इंडियन एंड सेंट्रल-एशियन आर्कियोलॉजी*, एल. ए. थॉमस तथा एफ. डब्ल्यू. थॉमस द्वारा अनूदित, पेरिस: पॉल ग्यूथनर; लंदन: हम्फ्री मिलफोर्ड, 1917; तथा आनंद के. कुमारस्वामी, “द ओरिजिन ऑफ द बुद्धा इमेज,” *द आर्ट बुलेटिन*, खंड 9, संख्या 4, 1927, पृ. 287-329.
2. सोन्या राई क्विंटानिला, *मेकिंग ऑफ अ बुद्धा: द आइकोनोग्राफी ऑफ मथुरा एंड सारनाथ*, लॉस एंजिल्स: गेटी रिसर्च इंस्टिट्यूट, 2007, पृ. 199-205, 219-248.
3. *एन्साइक्लोपीडिया ईरानिका*, “कुशन डायनेस्टी, आर्ट ऑफ द कुशान्स”;
4. आर. सी. शर्मा, *बुद्धिस्ट आर्ट ऑफ मथुरा*, दिल्ली: आगम कला प्रकाशन, 1984, पृ. 127-140.
5. विनय कुमार गुप्ता, “आर्कियोलॉजिकल लैंडस्केप ऑफ एंशिएंट मथुरा इन रिलेशन टू इट्स आर्ट वर्कशॉप्स,” *इंडियन हिस्टोरिकल रिव्यू*, खंड 42, संख्या 2, 2015, पृ. 189-209.
6. डेविड स्नेलग्रोव, संपादित, *द इमेज ऑफ द बुद्धा*, लंदन: सेरिंडिया पब्लिकेशन्स, 1978, पृ. 52-55; तथा जे. ई. वान लोहुइजन-डी ल्यूव, “फॉरेन एलिमेंट्स इन इंडियन कल्चर इंट्रोड्यूस्ड ड्यूरिंग द सिथियन पीरियड विद स्पेशल रेफरेंस टू मथुरा,” डी. एम. श्रीनिवासन, संपादित, *मथुरा: द कल्चरल हेरिटेज*, नई दिल्ली: मनोहर पब्लिकेशन्स, 1989, पृ. 72-82.
7. आर. सी. शर्मा, *बुद्धिस्ट आर्ट ऑफ मथुरा*, दिल्ली: आगम कला प्रकाशन, 1984, पृ. 143-170.
8. सोन्या राई क्विंटानिला, *मेकिंग ऑफ अ बुद्धा: द आइकोनोग्राफी ऑफ मथुरा एंड सारनाथ*, लॉस एंजिल्स: गेटी रिसर्च इंस्टिट्यूट, 2007, पृ. 199-205, 219-248.
9. आर. सी. शर्मा, *बुद्धिस्ट आर्ट ऑफ मथुरा*, दिल्ली: आगम कला प्रकाशन, 1984, पृ. 183-184.
10. आर. सी. शर्मा, *बुद्धिस्ट आर्ट ऑफ मथुरा*, दिल्ली: आगम कला प्रकाशन, 1984, पृ. 183-206.
11. आर. सी. शर्मा, *बुद्धिस्ट आर्ट ऑफ मथुरा*, दिल्ली: आगम कला प्रकाशन, 1984, पृ. 202-206; तथा क्रिश्चियन लुसानिट्स, *गांधारन आर्ट इन इट्स बुद्धिस्ट कॉन्टेक्स्ट*, ऑक्सफोर्ड: आर्कियोप्रेस, 2022, पृ. 25-26.
12. क्रिश्चियन लुसानिट्स, *गांधारन आर्ट इन इट्स बुद्धिस्ट कॉन्टेक्स्ट*, ऑक्सफोर्ड: आर्कियोप्रेस, 2022, पृ. 26.
13. सोन्या राई क्विंटानिला, *मेकिंग ऑफ अ बुद्धा: द आइकोनोग्राफी ऑफ मथुरा एंड सारनाथ*, लॉस एंजिल्स: गेटी रिसर्च इंस्टिट्यूट, 2007, पृ. 199-205; तथा आर. सी. शर्मा, *बुद्धिस्ट आर्ट ऑफ मथुरा*, दिल्ली: आगम कला प्रकाशन, 1984, पृ. 127-140.
14. सुसान एल. हंटिंगटन तथा जॉन सी. हंटिंगटन, *द आर्ट ऑफ एंशिएंट इंडिया: बुद्धिस्ट, हिंदू, जैन*, न्यूयॉर्क: वेदरहिल, 1985, पृ. 155-160.
15. जे. ई. वान लोहुइजन-डी ल्यूव, “गांधार एंड मथुरा: देयर कल्चरल रिलेशनशिप,” प्रतापादित्य पाल, संपादित, *एस्पेक्ट्स ऑफ इंडियन आर्ट*, लीडेन: ब्रिल, 1972, पृ. 27-43.
16. हेनरिक ल्यूडर्स, *मथुरा इंसक्रिप्शंस*, क्लाउस एल. जानर्ट द्वारा संपादित, गॉटिंगेन: वान्डेनहॉक एंड रुप्रेख्ट, 1961, पृ. 149-150, 187-188.
17. आर. सी. शर्मा, *बुद्धिस्ट आर्ट ऑफ मथुरा*, दिल्ली: आगम कला प्रकाशन, 1984, पृ. 217-226.

ISARA INSTITUTE OF MANAGEMENT & PROFESSIONAL STUDIES

RSEARCH GATEWAY

AROGYAM ONLINE

PARIVARTAN PSYCHOLOGY CENTER

भारतीय भाषा, शिक्षा, साहित्य एवं शोध
ISSN 2321 – 9726
WWW.BHARTIYASHODH.COM

INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF MANAGEMENT SCIENCE & TECHNOLOGY
ISSN – 2250 – 1959 (0) 2348 – 9367 (P)
WWW.IRJMST.COM

INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF COMMERCE, ARTS AND SCIENCE
ISSN 2319 – 9202
WWW.CASIRJ.COM

INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF MANAGEMENT SOCIOLOGY & HUMANITIES
ISSN 2277 – 9809 (0) 2348 - 9359 (P)
WWW.IRJMSH.COM

INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF SCIENCE ENGINEERING AND TECHNOLOGY
ISSN 2454-3195 (online)

WWW.RJSET.COM

INTEGRATED RESEARCH JOURNAL OF MANAGEMENT, SCIENCE AND INNOVATION
ISSN 2582-5445

WWW.IRJMSI.COM

JOURNAL OF LEGAL STUDIES,POLITICS AND ECONOMICS RESEARCH

WWW.JLPER.COM